वक्तव्य

एक तो संपादक का कार्य स्वयं ही कठिन है, फिर कवियों की कृतियों का और ऐसे वैसे भी नहीं, महारथियों की कविताओं का संपादन और भी कठिन है। ये लोग तो 'चरण धरत कांपत हियो' वाले रहते हैं। उनकी गति में बाधा डालना कम से कम मेरे लिए अनधिकार चेष्टा है।

इस संग्रह का संपादकत्व स्वीकार करते समय मैंने सोचा था कि मैं अपनी दृष्टि से इन कवियों की कविताओं में तारतम्य स्थापित करके उनकी आंतरिक-प्रेरणाओं पर प्रकाश डालने और उन कविताओं के पारस्परिक सामंजस्य को अंकित करने का यत्न करूँगा। परंतु इस संग्रह के प्रकाशन में इतनी शीघ्रता की जा रही है कि मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। अतः विवश होकर मुझे इन कविताओं के संबंध में अपने प्रत्युत्पन्न विचार संक्षेप में प्रकट करके ही सन्तोष कर लेना पड़ता है।

इस संग्रह में हिन्दी के तीन कवियों की कृतियां ग्रथित हैं। पण्डित माखनलाल जी चतुर्वेदी कवि-रूप में 'एक भारती आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, श्रीमती सुभद्रा कुमारी जी चौहान ने किसी विशेष उपनाम से कविता नहीं लिखी; परंतु उनकी रचनाओं ने उनके नाम को ही विशेषता दे दी है, और रुबाइयाते उमर ख़य्याम का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी अनुवाद करने के नाते केशवप्रसाद जी पाठक को हिन्दी उमर ख़य्याम के नाम से पुकारना अनुपयुक्त न होगा।

पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी की कविता उनके उपनाम के अनुरूप ही है। आप उनकी किसी भी रचना को उठा लीजिए, उसमें

आप कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में भारत माता को छटपटाती हुई, कहीं आहत होकर गिरती हुई, कहीं विजय के लिए उठती हुई, किन्तु सदा स्वतंत्रता की ओर अदम्य उत्साह से बढ़ती हुई अवश्य पावेंगे। उनका समस्त कवित्व केन्द्रीभूत है भारत की आत्मा में।

श्रीमती सुभद्राकुमारी जी चौहान पराकोटिवादी हैं। इनका प्रेम, इनका आनन्द, उनका उल्लास, उनका नैराश्य, इनका वीरत्व, उनकी देश-भक्ति सब अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचे हुए मिलते हैं। जब वे अनुभव करती हैं तब वे हृदय के किसी एक कोने में नहीं अनुभव करतीं, किन्तु उनका सम्पूर्ण हृदय उस अनुभूति से ओत-पोत हो उठता है, और उस समय उनके हृदय में यदि अन्य किसी भावना का उदय भी होता है तो वह भी उसी रंग में रँगकर प्रधान अनुभूति की सहायक बन जाती है। उनकी काव्य-प्रतिभा की चेतना-तरङ्गिणी एकओर स्वदेश के कूल और दूसरी ओर मानवता के तट को चूमती हुई चलती है।

पं॰ केशवप्रसाद जी पाठक की कविता में चिन्तनशीलता है। वे अनुभव करते हैं; फिर उस अनुभूति की रूपरेखा की जाँच करते हैं, और अन्त में उसे काव्य परिधान पहिनाकर सौन्दर्यमयी बना देते हैं। इनके शब्द मँजे हुए हैं, भाव व्यवस्थित हैं, और विचार-शृंखला क्रमबद्ध है, मानो कुशल जौहरी ने चुन चुन कर मोतियों का हार बना दिया है, जिसका प्रत्येक दाना अपने ठीक स्थान पर जमा है। सममिति का सौन्दर्य इनकी कविता की विशेषता है।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए कविताओं का उदाहरण देना अनावश्यक है, क्योंकि यह संग्रह ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है।

जबलपुर
६-२-१९३५

लक्ष्मणसिंह चौहान

सूची

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

ी सुभद्राकुमारी चौहान

श्री केशवप्रसाद पाठक

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

"कुञ्ज कुटीरे यमुना तीरे"

पगली तेरा ठाठ, किया है रक्ताम्बर परिधान।
अपने क़ाबू नहीं और यह सचत्यारण विधान॥
उन्मादक मीठे सपने ये और अधिक मत ठहरें!
साक्षी न हों न्याय-मन्दिर में कालिन्दी की लहरें॥

डोर खींच मत शोर मचा,
मत बहक लगा मत ज़ोर।
मांझी, थाह देख कर आ तू,
मानस-तट की ओर॥

कौन गा उठा ? अरे करे मत ये पुतलियाँ अधीर।
इसी क़ैद पर बन्दी हैं वे श्यामल-गौर शरीर॥
पलकों की चिक पर हृत्तल के छूट रहे फ़व्वारे।
निश्वासें पंखे झलती हैं, उनसे मत गुज़ारे॥

यही व्याधि मेरी समाधि है,
यही राग है त्याग।
क्रूर तान के तीखे शर मत
छेदें मेरे भाग॥

* * *

काले अन्तस्तल से फूटी कालिन्दी की धार।
पुतली की नौका पर लाई मैं दिलदार उतार॥
बादबान तानी पलकों ने—हा यह क्या चीत्कार!
कैसे ढूढ़ूँ? हृदय-सिन्धु में, छूट पड़ी पतवार॥

भूली जाती हूँ अपने को,
प्यारे मत कर शोर।
भाग नहीं, गह लेने दे,
तेरे अम्बर का छोर॥

* * *

अरे, बिकी बेदाम कहाँ मैं हुई बड़ी तक़सीर।
धोती हूँ, जो बना चुकी हूँ पुतली में तस्वीर॥
डरती हूँ दिखलाई पड़ती तेरी उसमें बंशी।
'कुञ्ज-कुटीरे यमुना-तीरे' तू दिखता यदुवंशी॥

अपराधी हूँ, मंजुल मूरत, ताकी
हा! क्यों ताकी?
वनमाली! मुझ से न मिटेगी,
ऐसी बाँकी झाँकी॥

***

भरी खोद कर मत देखे, ये अभी पनप पाये हैं।
बड़े दिनों में, खारे जल से कुछ अङ्कुर आए हैं॥
पक्षी को मस्ती लाने दे, कलियाँ कढ़ जाने दे।
अन्तरतम को अन्त चीर कर अपनी पर आने दे॥

ह्री-तल वेध, समस्त खेद तज,
मैं दौड़ी आऊँगी।
'नील-सिन्धु-जल-धौत-चरण' पर
चढ़ कर खो जाऊँगी॥

***
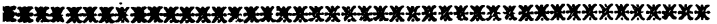
लूँगी दर्पण छीन

लूँगी दर्पण छीन—देख मत
ले मतवाला चल जाये,
जिन पलकों पर मिटे कई, मत
उन पर चढ़े, फिसल जाये।
लूँगी दर्पण छीन—द्वैत दोनों
बिन एक न हो जाये,
और निगोड़ी जीभ, ओंठ को
कहीं न श्री-हत कर पाये।

लूँगी दर्पण छीन—न छलके
नयनाऽमृत गालों पर,
मत खारा पानी पड़ जाये
यौवन के छालों पर।
लूँगी दर्पण छीन—शरण जाने
पर, दीठ गुरूर करे,
अन्तस्तल की चंगुल से
फिसलादे—चकनाचूर करे!
लूँगी दर्पण छीन, कुटो का
एक मात्र शृङ्गार,
सूरत क़ीमत ?-मतहँस खोले
मधुर अन्त का द्वार।
अरे बिलम जाने वाले जीवन—
कैसी है मौन?
कृष्णार्पण! चलने से पहले
लूँगी दर्पण छीन।

उन्मूलित वृक्ष

भला किया, जो इस उपवन के,
सारे पुष्प तोड़ डाले,
भला किया, मीठे फलवाले
ये तरुवर मरोड़ डाले,
भला किया, सींचो पनपाओ
लगा चुके हो जो कलमें,
भला किया, दुनियाँ पलटा दी
प्रबल उमङ्गों के बल में।

लो, हम तो चल दिये,
नये पौधो प्यारो, आराम करो,
दो दिन की दुनियाँ में आये,
हिलो-मिलो कुछ काम करो॥

पथरीले ऊँचे टीले हैं,
रोज़ नहीं सींचे जाते,
वे नागर न यहाँ आते हैं,
जो थे बाग़ीचे आते,
झुकी टहनियाँ तोड़ तोड़ कर,
बनचर भी खा जाते हैं,
शाखामृग कन्धों पर चढ़ कर
भीषण शोर मचाते हैं।

* * *

दीनबन्धु की कृपा! बन्धु,
जीवित हैं, हाँ हरियाले हैं,
भूले भटके कभी गुज़रना
हम वे ही फल वाले हैं॥

मरण, त्यौहार

नाश ने सागर-तरंगें चीर कर,
गगन से भी कठिन स्वर गम्भीर कर,
तरलता का मधुर आश्वासन दिये,
किन्तु ओलों से इरादों को लिये—
सन्धि का सन्देश भेजा है यहाँ
पूछ कर—"किसके कलेजा है यहाँ?"

चमकते नक्षत्र थे, ग्रह भी बड़े,
हाँ सुधाकर थे, उतरते-से खड़े।
नाश का आकाश में तम-तोम था,
फैलकर भी विवश सारा व्योम था।
उस समय सहसा सफेदी बह उठी,
मोम की दीपें सुलगती कह उठीं—
"नाशजी ! नक्षत्र यदि लाचार हैं,
श्रीसुधाकर भी उतरते द्वार हैं,

"तो जलेंगी, तेल कर निज कामना,
आइये, मिटकर करेंगी सामना,
"जानती हैं, ज़ोर घर की वायु का,
जानती हैं, समय, अपनी आयु का,
"जानतीं बाज़ार-दर अपना अहो,
"जानती हैं, वृष्टि के दिन, मत कहो।

"जानती हैं—सब सबल के साथ हैं,
किन्तु रवि के भी हज़ारों हाथ हैं।
"वे कलेजे ही, कठिन 'तम' लाद कर,
अब स्मशानों को स्वयं आबाद कर,
'एक से लग एक हम जलती रहें,'
और बलि-बहिनें, बढ़ें, फलती रहें;
"सूर्य की किरनें कभी तो आयँगी !
जलन की घड़ियाँ, उन्हें ले आयँगी।"

* * *

(थी जहाँ पर भट्टियाँ, सब बुझ पड़ीं;
विश्व में चिनगारियाँ आगे बढ़ीं।
देव, जीने दो, विमल चिनगारियाँ,
ये चमकती आत्म-बलि की क्यारियाँ।)
जग पड़ीं वे तुच्छ-सी चिनगारियाँ,
कोटि कण्ठों को उन्हीं पर वारियाँ!

"है हमें निर्वासनों में हरि मिला,
और तप करते विजय का वर मिला,
"तप करो, गड़बड़ करो मत, तप करो,
शान्ति में मत, क्रान्ति का आतप करो"
बंग-युग से, कोटि शिर झुकते जहाँ,
भूल पथ, उस पांडिचेरी ने कहा।

* * *

"ले कृषक-सन्देश, कर बलि-वन्दना,
ध्वज तिरंगे की किये बहु अर्चना,
"घूमता-चरखा लिये गिरि पर चढ़ो,
ले अहिंसा-शस्त्र आगे को बढ़ो,
"साबरमती पर क्यों न हम को नाज़ हो—
"अब जवाहर शीश मेरा ताज हो।"

"राज-पथ की गालियाँ हमने सहीं,
प्रार्थनायें पुस्तकें रचकर कहीं,
"श्रेष्ठ है, वह विपिन है अपना सहा—
वध गजेन्द्रों का नहीं होता जहाँ !
"है रिपोर्टों में कलेजा छप रहा,"
देश के 'आनन्द-भवनों' ने कहा ।

* * *

" कुर्सियों को है मधुर स्वाधीनता, '
छोड़ देंगे हम गुलामी, दीनता,
"थैलियाँ हों, दे सकें हम गालियाँ,
हो सकें साम्राज्य की 'घर-वालियाँ' "
देश का स्वातन्त्र्य गर्वित था जहाँ—
पुण्य-पुर के केहरी-दल ने कहा !—

जम्बुकेश, चलो !— जहाँ संहार है,
वन्य पशुओं का लगा बाज़ार है !
आज सारी रात कूकेंगे वहाँ,
मोम-दीपों का 'मरण त्यौहार' है !!
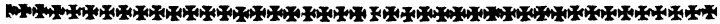
पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुर बाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में
बिँध प्यारी को ललचाऊँ,

चाह नहीं, सम्राटों के शव पर
हे हरि! डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के शिर पर
चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ आवें वीर अनेक॥

प्रभात

चल पड़ी चुपचाप, 'सन-सन-सन' हुआ,
बेलियों को यों चिताने सी लगी।
पुतलियाँ कलियाँ अरी खोलो ज़रा,
लिपटना छोड़ो— मनाने-सी लगी।

बेलियाँ सिमटीं, पखुड़ियाँ खुल पड़ीं,
हिल स्वपतियों को जगाने-सी लगीं।
पत्तियों की चुटकियाँ बजने लगीं,
डालियाँ कुछ डुलमुलाने-सी लगीं।

जग उठा तरु–वृन्द–जग, सुन घोषणा,
पंछियों में चहचहाहट मच गई।
वायु का झोंका जहाँ आया, अहा!
विश्व-भर में सनसनाहट मच गई।
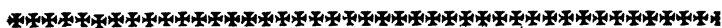
आँसू

आह ! कैसे गिरे ? सीपियों से
ये गरम-गरम मोती,
जगमग हृदय किये देती है,
टपक-टपक जिन की ज्योती ।

क्यों यह चढ़ने लगीं
चमेली की कोमलतर कलिकायें—
हार बनाती हुई हृदय पर
बिखर-बिखर दायें-बायें ?

'क्यों रह-रह बह-बह देते हैं'
क्या अपराध किया मैंने ?
क्या भीतर करुणाब्ध छुपा है
ये आ गये पता देने ?

क्या दूषित प्रतिबिम्ब पड़ गया
अतः स्वच्छतर होने को
छूटे हैं अमृत के सोते
मृदुल पुतलियाँ धोने को ?

देखा जिन नयनों से जीवन-धन
उनसे आसानी से,
आनन न दीखें उन्हें भर दिया
अत: हृदय के पानी से ?

अथवा, कई मास का ग्रीषम
रहा घनों को उमड़ाता,
उन्हें सुयोग वायु आदर से
दौड़ पड़ा द्रुत बरसाता ?

सिंचित था जो हृदय कोष में
करुणा-रस-पूरित सामान,
उसे बहाने बैठ पड़ी हो
आया जान नया महमान ?

जिसने अपनी भूख बुझाई
कारागार—प्रहारों से,
उसकी प्यास मिटाती हो क्या
नयनों की जल-धारों से ?

झिड़की, ठोकर, गाली से क्या
कायरता आई जानी,
इसीलिये यह चढ़ा रही हो
जाग्रति-रूप नया पानी ?

छूटा हुआ बाण · हूँ क्या
बोधरी धार उसकी जानी,
धन्वा पर चढ़ने के पहिले,
चढ़ा रही उस पर पानी !

जीता पाथा जो मुरझाया
ग्रीषम की नादानी से,
अपना पौधा सींच रही हो
बन-मालिनि ! इस पानी से ?

बलि होने में यज्ञ-हृदय हो
करते लख खींचा तानी,
राष्ट्र-देवि ! करने आ बैठी
क्या मुझ को पानी-पानी ?

चोर डाकुओं का साथी हूँ
दूषित हुआ छिद्र छल से,
करती हो पढ़ मन्त्र-मुक्ति का
मुझे पवित्र नेत्र-जल से ?

श्रम हो गया, साधना साथी
देव बना, ऐसा अविवेक—
होने से, करने बैठी हो
क्या यह तुम मेरा अभिषेक ?

मातृभूमि-हित के कष्टों का
राज्य पुनः पाऊँ सविवेक,
सिंहासन मिलने के पहिले
क्या यह करती हो अभिषेक ?

आते हैं स्वातन्त्र्य--देवता
उसके चरण धुलाने में,
सिखा रही हो साथी होऊँ
अविरल अश्रु बहाने में ?

'स्नेह–दूध कब से रक्खा है,
लूँ नवनीत चलाकर चक्र,'
उसे जमाने डाल रही हो,
हृदय-भाँड से प्यारा तक्र ?

कहती हो क्या—'आर्य-भूमि की
श्रीगोपाल लाज राखैं'
तब तक दम मत लो जब तक हैं
मेरी आश--भरी आँखें ?
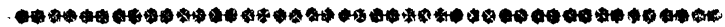
हृदय-देश में आते हैं क्या
देवी ! दिव्य विचार-सुरेश,
विमलवारि के, पथ-सिंचन से,
है स्वागत का यत्न विशेष ?

श्रीस्वतन्त्रता की वेदी पर,
अंग पुष्प होकर निश्चल—
देख चढ़ा पूजा हित लाई
नयनों की गंगा का जल ?

मैं जाता हूँ युद्ध-क्षेत्र में
अश्रु-बिन्दु से अतः निडर,
लिखती हो—'जीतो तो लौटो'—
पृष्ठ-पत्र पर ये अक्षर ॥

मिट्टी का पुतला हूँ उसमें
दे-दे नयनों की जलधार,
पंक बनाती हो कर होती
क्या माँ का मन्दिर तैयार ?

कठिन क्रूरताओं से देखा
विदलित हृदय हुआ सारा,
अमृत सोतों छोड़ रही हो
गरम-गरम यह जलधारा ?

बड़ा प्रेम-पिंजड़े का पाला
हंस पलट आया लख-लख,
नयन–सीपियों की मुक्ताएँ
चुगा रही हो क्या रख-रख ?

और इलाजों से निराश हो
दे कर स्नेह-अग्नि का ताव,
जीवन-लोशन छिड़क रही हो,
भरें तुरन्त हृदय के घाव ?

हृदयज्वर व्याकुल करता था
मिलन-घटी ने साधा काज,
उतरा ताप इसीसे बहता,
नयन-द्वार पसीना आज ?

स्नेह-सिन्धु की नादों को सुन
हृदय हिमालय तज अपना,
व्याकुल हो कर दौड़ पड़ी क्या
ये दोनों गंगा-जमना ?

'कहीं हृदय में पहुँच न जाये',
लाग न पाये पथ का शोध,
तज विरोध, ठाना है आँसू
से दृढ़तर निष्क्रिय प्रतिरोध ?

निरे उपल को शिव-स्वरूप गिन
पूजन कर हो रहीं सफल,
जीवन-घट की युगल बिन्दुएँ
टपकाती हैं गंगा-जल ?

दूषित लख नवनीत हृदय की
ज्वालाएँ पहुँचाती हो ?
खौला कर खारा जल दे-दे,
उसको शुद्ध बनाती हो ?
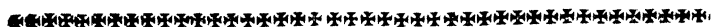
खीझमयी मनुहार

किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका ?
तुझे झाँकना पाप हुआ;
आग लगे—बरदान निगोड़ा
मुझ पर आकर शाप हुआ !

जांच हुई, नभ से भूमण्डल
तक का व्यापक नाप हुआ;
अगणित बार समा कर भी
छोटा हूँ यह सन्ताप हुआ।

अरे अशेष ! शेष की गोदी
तेरा बने बिछौना-सा।
आ मेरे आराध्य ! खिला लूं
मैं भी तुझे खिलौना सा॥

हरियाली घड़ियाँ

'आदि' भूली गोद की गुड़िया रही,
भूलना ही याद आता है मुझे।
'अन्त' में अन्तर हज़ारों मील का,
मैं नहीं, वह देख पाता है मुझे॥

किन्तु दोनों के स्मरण के बोझ से,
'ही' बचा कर एक स्वर गुंजारती।
मध्य की घड़ियाँ मधुर संगीत हैं,
हूँ उन्हीं पर मस्त लहरें वारती॥

कौन सी हैं ? मस्त घड़ियाँ चाह की,
हृदय की पगडंडियों की राह की।
दाह की ऐसी कनक-कुन्दन बने,
मौन की-मनुहार की है-आह की॥

भिन्नता की भीत सहसा फांद कर,
नैन प्रायः जूझते लेखे गए।
बिन सुने हँसते, चले चलते हुए,
बिना बोले बूझते देखे गए॥

निस्य ही बेचैन कारागार था,
रोज़ कैदी बन्द कर लाए गए।
कामिनी कहने लगी 'दिन चाह का',
भामिनी बोली 'हमारे व्याह का'॥

किन्तु यह दिन व्याह का, यह गालियाँ,
जानती है सिर्फ़ फाँसी-वालियाँ।
या कि फिर मंसूर को दूल्हा मिले,
फूल यौवन का सुशूली पर खिले।

भूलती क्यों बालिके! कलिके! बता,
नेक हँस पाऊँ अरी आली कहाँ?
तोड़ प्यारे के चरण पर डाल दे,
है कहाँ?—प्यारा हृदय-माली कहाँ?

स्मृति के मधुर बसन्त

पधारो स्मृति के मधुर बसन्त !

शीतल स्पर्श मन्द मदमाती,

मोद सुगन्ध लिए इठलाती,

यह काश्मीर-कुञ्ज सकुचाती, निश्वासों की पवन प्रचारो ॥ स्मृति के० ॥

तरु-अनुराग लालसा-डाली,
सिमटी प्रीति-लता हरियाली,
विमल अश्रु-कलिकाएँ, उन पर तोडूँगी, ऋतुराज ! उभारो ॥ स्मृति के० ॥

तोडूँगी ? ना, खिलने दूँगी,
दो दिन हिलने-मिलने दूँगी,
हिला-डुला दूँगी शाखाएँ, 'चुने सकल संसार'—उचारो ॥ स्मृति के० ॥

आते हो ? वह छवि दरसा दो,
मेरा जीवन-धन हरषा दो,
फूलों की बरसा बरसा दो, डूबूँ, तैरूँ, सुध न विसारो ॥ स्मृति के० ॥

दोनों भुजा पकड़ ली पापी,
तू जलधर, मैं बनी कलापी,
नाचें गाएँ पागल बन बन आज, जरा जर्जरता टारो ॥ स्मृति के० ॥

भीजे अम्बर वाली ख्याली !
चढ़ तरुवर की डाली-डाली,
उड़ चलो मेरे वनमाली ! "पगली !" कह तुम वहाँ पुकारो ॥ स्मृति के० ॥

नहीं, चलो हिलमिल कर फूलें,
बने विहङ्ग झूलने झूलें,
भूलें आप, भुलादें सब को, भूमण्डल पर स्वर्ग उतारो ॥ स्मृति के० ॥

नहीं, चलो हम हों दो कलियाँ,
मुसक, सिमक होवें रँग-रलियाँ,
राष्ट्र-देव रँग रँगो सँभालो ! कृष्णार्पण के प्रथम पधारो ॥ स्मृति के० ॥

आओ ज़रा भृङ्ग बन जावें,
आँसू रस पी पी सुख पावें,
गूँजे लिपट लिपट—चुप रह,-लग जायेगी-मत मारो ॥ स्मृति के० ॥
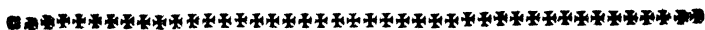
वेदना गीत से

कम्पन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो?
मारुत ही क्यों, तरुवर-कुञ्जों में न विलम पाते हो,
और, पंछियों की तानों से ज़रा न टकराते हो,
टेकड़ियों के द्वार, कहो, कैसे चढ़कर आते हो?
आते-जाते हो, या मुझ में आकर छिप जाते हो?

अमित की मति सी परम गँवार
आह की मिटती सी मनुहार—
पूछती है तुम से दिलदार—

कौन देश से चले? कौनसी मञ्जिल पर जाते हो?
कसक, चुटकियों पर चढ़कर, क्यों मस्तक झुलवाते हो?
कम्पन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो?
क्या बीती है?—आजाने दो उसको भी इस पार;
क्यों करते हो लहराने का भूतल में व्यापार?
चट्टानों से बनी विन्ध्य की टेकड़ियों के द्वार—
वायु विनिन्दित तरलाई पर तैर रहे बेकार—

छटपटाहट को यों मत मार,
पहिन सागर लहरों का हार,
खोल दूं कोटि कोटि हृद्द्वार,

कहाँ भटकते, लेते प्राणों को बन राग विहाग!
शीतल अंगारों से विश्व जलाने क्यों जाते हो?
कम्पन के तागे में गूँथे से क्यों लहराते हो?
किसके लिए छेड़ते हो अपनी यह तरल तरंग?
किसे डुबोने को घोला है, यह लहरों पर रंग?
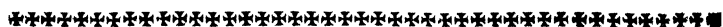
कोई गाहक नहीं, अरे, फिर क्यों यह सत्यानाश ?
बांस, कांस, कुस से सहते हो, लहरों का उपहास ?

अरे वादक क्यों रहा उड़ेल,
खेलता आत्म-घात का खेल,
उड़ाता व्यर्थ स्वरों का मेल,

यह सच है किस लिए बिना पंखों की मृदुल उड़ान ?
दूर नहीं होते, माना; पर पास भी न आते हो ?
कम्पन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?
मानूं ? कैसे ? कि यह सभी सौभाग्य सखे मुझ पर है।
है जो मेरे लिए पास आने में किसका डर है ?
मेरे लिए उठेंगी, आशाओं में ऐसी ध्वनियां,
करुणा की बूंदों, काली होंगी उनकी जीवनियां !

अरे, वे होंगी क्यों उस पार,
यहीं होंगी पलकों के द्वार,
पहिन मेरी श्वासों के हार,

आह, गा उठे, हेमांचल पर तेरी हुई पुकार—
बनने दे तेरी कराह को परसों की हुँकार—
और जवानी को चढ़ने दे बलि के मीठे द्वार,
सागर के धुलते चरणों से उठे प्रश्न इसबार—
अन्तस्तल से अतल वितल को क्यों न वेध जाते हो ?
अजी वेदना-गीत गगन को क्यों न छेद जाते हो ?
उस दिन ? जिस दिन महानाश की धमकी सुन पाते हो !
कम्पन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?

क़ैदी और कोकिला

क्या गाती हो, क्यूं रह-रह जाती हो—कोकिल, बोलो तो ?
क्या लाती हो ? सन्देशा किसका है—कोकिल, बोलो तो ?

ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
डाकू चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट-भर खाना,
मरने भी देते नहीं—तड़प रह जाना।

जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है,

हिमकर निराश कर गया रात भी काली,
इस समय कालिमामयी जगी क्यूं आली ?

क्यूं हूक पड़ी ? वेदना—बोझवाली सी—कोकिल, बोलो तो ?
क्या लुटा ? मृदुल वैभवकी रखवाली-सी—कोकिल, बोलो तो ?

बन्दी सोते हैं, है घर्घर श्वासों का,
दिन के दुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है—लोहे के दरवाज़ों का,
बूटों का या सन्त्री की आवाज़ों का,
या करते गिनने वाले हा-हा-कार,
सारी रातों है—एक, दो, तीन, चार !
मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा !—(मधुर) क्यों गाने आई आली ?
क्या हुई बावली, अर्द्धरात्रि को चीखीं—कोकिल, बोलो तो ?
किस दावानल की ज्वालाएँ हैं दीखीं—कोकिल, बोलो तो ?
निज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जीके घावों पर तरलामृत बरसाने,
या वायु-विटप वल्लरी चीर हठ ठाने,—
दीवार चीरकर अपना स्वर अज़माने,
या लेने आई मम आँखों का पानी,
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी !

खा अन्धकार करते वे जग-रखवाली,
क्या उनकी आभा तुझे न भाई आली ?
तुम रवि किरणों से खेल जगत को रोज़ जगाने वाली—
कोकिल, बोलो तो,
क्यों अर्धरात्रि में विश्व जगाने आई हो मतवाली—
कोकिल, बोलो तो ?
दूबों के आँसू धोती, रवि-किरणों पर,
मोती बिखराते विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माण्ड कँपाने उस उद्दण्ड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा;
अब सर्वनाश करती क्यों हो ? तुम जाने या वे-जाने,—
कोकिल बोलो तो ?
क्यों तमोरात्रि पर विवश हुई लिखने मधुरीली तानें—
कोकिल बोलो तो ?

क्या ? देख न सकती जंज़ीरों का पहना ?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह बृटिश राज का गहना !
गिट्टी पर ? अंगुलियों ने लिक्खे गान !
कोल्हू का चरखा चूँ ?—जीवन की तान ।
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूँआ ।
दिन में मत करुणा जगे, रुलाने वाली,
इसलिये रात में गज़ब ढा रही आली ?
इस शान्त समय में अन्धकार को भेद रो रही क्यों हो—
कोकिल बोलो तो ?
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज इस भाँति बो रही क्यों हो—
कोकिल, बोलो तो ?
काली तू रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली,
काली लहर, कल्पना काली,
मेरी काल-कोठरी काली,
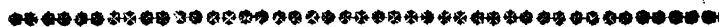
टोपी काली, कम्बल काली,
मेरी लोह-श्रृंखला काली,
पहरे की हुंकृति की ब्याली,
तिस पर है गाली ! ऐ आली !
इस काले संकट-सागर पर—मरने की मदमाती—
कोकिल बोलो तो ?
अपने चमकीले गीतों को किस विधि हो तैराती—
कोकिल बोलो तो ?
तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली,
तेरा नभ भर में संचार,
मेरा दस फुट का संसार।
तेरे गीतों उठती वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह !
देख विषमता तेरी मेरी,
बजा रही तिस पर रणभेरी !
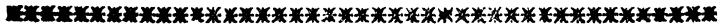
इस हुंकृति पर, अपनी कृति से, और कहो क्या कर दूँ ?—
कोकिल, बोलो तो ?
मोहन के व्रत पर, प्राणों का आसव किस में भर दूँ—
कोकिल, बोलो तो ?

फिर कुहू—अरे क्या बन्द न होगा गाना,
यह अन्धकार में मधुराई दफ़नाना !
नभ सीख चुका है कमज़ोरों को खाना
क्यों बना रहा अपने को उसका दाना ?
तिस पर, करुणा-गाहक बन्दी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियाँ श्वासों से धोते हैं।
सींकचे-रूपिणी लोहे की पाशों में,
क्या भर देगी ? बोलो निन्दित लाशों में,
क्या, घुस जायेगा रुदन तुम्हारा निश्वासों के द्वारा—
कोकिल बोलो तो ?
और प्रात में हो जायेगा उलट-पुलट जग सारा—
कोकिल बोलो तो ?

सातपुड़ा शैलके एक झरनेको देखकर

कितने निर्जनमें दीखा, रे मुक्तहार वाणीके
कवि, मंजुल वीणाधारी, नवप्रकृति कल्याणीके ;
किस निर्झरिणीके धन हो, पथ भूले हो किस घरका ?
है कौन वेदना, बोलो, कारण क्या करुण-स्वरका ?
मेरी वीणाकी कटुता, धो डाल तरल तारोंसे,
जो मुझ-सा पागल होके, वह उठे हृदय-द्वारोंसे।
चढ़कर, गिरकर, फिर उठकर, कहता तू अमर कहानी,
गिरिके अंचल में करता कूजित कल्याणी वाणी।

इस ध्वनिपर प्रतिध्वनि करती, रह रहकर परवत-माला,
यह गुफा गीत गाती है ओढ़े नव हरा दुशाला।
बे-जाना नाद सुनाता, जाना-सा जीमें पाता,
अवनी-तल क्या, हीतल में तू शीतल धूम मचाता।
क्या तूने ही नारद को सिखलाया ता-ना-ना-ना?
क्या तुझसे ही माधवने सीखा था बीन बजाना?
क्या मेरा गीत मधुर है?—पड़ गया तुम्हार पानी!
ऊँचे-नीचे टीलोंसे, मैंने कब कही कहानी?
पाषाणोंसे लड़कर भी ठंडक—कब मैंने जानी?
कब जीका मल धो पाता, मेरी आंखोंका पानी?
कब श्रमित पा सके मुझमें, शीतल तुषारकी धारा?
मैंने प्रियतमका रुख कब गिरकर-उठकर पथ धारा?
कब मेरी बूंदों, मेरे हैं तट हरियाले होते!
कब ग्वाले मुझमें आके, अपने चरणों को धोते?
मैं गीत साँसमें गुथ कब आठों पहरों गाता हूं?
कब रवि-शशिका समता से स्वागत मैं कर पाता हूँ?

मैं भूमण्डलको कृतिसे हूं कुम्भीपाक बनाता,
तू स्वर्गंगा बन करके सुर-लोक महीपर लाता।
लय मेरी प्रलय न करती तरुणोंके हृदय उतरके,
तू कल-कल कहला लेता, पंछी-दल पागल करके।
मेरी गरीब करुणापर, वे' मस्तक डोल न पाते,
तेरी गतिपर तरु-तृण हैं, अपनी फुँगनियाँ हिलाते।
मैं पथके अवरोधोंसे, पथ-भूला रुक जाता हूं,
भारी प्रवाह होकर भी, विषयोंमें चुक जाता हूँ।
पर तेरे पथ को रोकें जिस दिन काली चट्टानें,
साथी तरु-लता भले हो तुझको लग जांय मनानें,
तब भी तू—ज़रा ठहरकर, सीकर संग्रहकर अपने,
चट्टानों के मनसूबे, चढ़कर, कर देता सपने।
या हृदय वेध बज्रोंके शीतल सेना ले अपनी,
प्रियतम-प्रदेश चल देता, पहने नीली-सी कफनी।
मैं उपकारी के प्रति भी, ममता बारूद बनाता,
हूँ अपनी कुटी जलाता, उसके घर आग लगाता।

तू 'मित्र,—प्रमत्त करों से ग्रीषम में प्राण सुखाता,
पर उसका स्वागत गाकर, किरनों पर अर्घ्य चढ़ाता।
मेरे गीतों की प्यारे! बूंदें सूखने न पातीं,
विस्मृति उनको करमें ले, अपना शृङ्गार बनाती।
पंछी दलने पर तेरे गीतोंका गान किया है,
हरिने तेरी वाणीको अमरत्व प्रदान किया है।
क्या जाने तरु पंखेरू तुझको लख क्यों जीते हैं?
तेरा कल-कल पीते हैं, या तेरा जल पीते हैं?
अपने पंखोंसे किसने, नभ-छेदन इन्हें सिखाया?
आकाश-लोकका किसने, इनको गन्धर्व बनाया?
श्यामल घन! श्वासों-जैसी बांसुरी न दिखलाती है,
पर तेरे गीतोंकी धुन स्वच्छन्द सुनी जाती है।
ये छोटे-छोटे तरुवर, रह-रह तालें देते हैं,
तुझसे प्रसादमें ठंडे प्यारे मोती लेते हैं।
कितने प्यारे तरु फूले, कलियोंका मुकुट लगाये,
पर तेरी गोदीमें हैं, वे अपना शीश झुकाये।
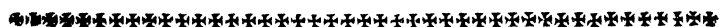
मानो वे गले लिपटके, कहते—'उपकार अमित हैं,
साँवले तुम्हारी करुणा, बस, तुमको ही अर्पित है।"
फूलोंको श्याम! चढ़ाकर जब वे सुगन्ध देते हैं,
पत्ते पंखे बन, मारुत जब मन्द-मन्द देते हैं;
तुम अपने पास न रखकर, ज्यों का त्यों उन्हें बहाते,
लहरोंमें नचा-नचाकर, प्रियतमके घर ले जाते।
बनमाली बन-तरुओंमें तुझसे खिलवाड़ मचाते,
गिरि-शिखर, गोद लेनेमें तुझपर हैं होड़ लगाते।
जब घनश्याम आ जाते, तुझपर जीवन ढुलकाते,
हँस-हँसकर इन्द्र-धनुषका हैं मुकुट तुझे पहनाते।
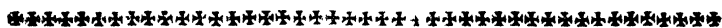
श्री सुभद्रा कुमारी चौहान

प्रेम-श्रृंखला

क्या कहते हो, आ न सकोगे
तुम मेरी कुटिया की ओर ?
किन्तु सहज ही तोड़ सकोगे
कैसे प्रबल प्रेम की डोर ?

मेरे इस पवित्र बन्धन में
मोह नहीं है, राग नहीं।
मेरे इस स्नेही-स्वभाव में
है कलुषित अनुराग नहीं॥

मेरी इन साध्वी साधों में
तड़प नहीं है, आह नहीं।
मेरे स्निग्ध मधुर भावों में
शीतलता है, दाह नहीं॥

मेरी अभिलाषाओं में है
कोमलता, उन्माद नहीं।
मेरी आलोकित आशा में
आभा है, अवसाद नहीं॥

इस उल्लासभरे जीवन में
तिल-भर हाहाकार नहीं।
है अटूट यह प्रेम-शृंखला,
दुर्बल पीड़ित प्यार नहीं॥

कैसे इसको तोड़ सकोगे ?
फिर से हृदय टटोलो तो !
क्या सचमुच तुम आ न सकोगे ?
सोच-समझ कर बोलो तो ॥

तुम कहते हो आ न सकोगे,
मैं कहती हूँ आओगे ।
सखे ! प्रेम के इस बन्धन को
यों ही तोड़ न पाओगे ॥

विषय-विकार-हीन दो हृदयों
का यह पावन स्नेह-विधान,
आत्मोन्नति के पथ पर चढ़ने
का बन जायेगा सोपान ॥

घर-बाहर की सूनी घड़ियाँ
में इसकी स्मृतियाँ प्यारी,
द्योतक होंगी सत्य—मार्ग की,
निश्चय होंगी सुखकारी

पल-भर को ही शान्ति-सहित फिर
इस पर करो विचार सखे !
देखो तो कितना सुन्दर है
दो हृदयों का प्यार सखे !

मेरा जीवन

मैने हँसना सीखा है
मैं नहीं जानती रोना ।
बरसा करता पल पल पर
मेरे जीवन में सोना ।

मैं अब तक जान न पाई
कैसी होती है पीड़ा ?
हँस-हँस जीवन में कैसे
करती है चिन्ता क्रीड़ा ?

जग है असार सुनती हूँ
मुझको सुख-सार दिखाता।
मेरी आँखों के आगे
सुख का सागर लहराता।

कहते हैं होती जाती
खाली जीवन की प्याली।
पर मैं उसमें पाती हूँ
प्रतिपल मदिरा मतवाली।

उत्साह, उमंग निरंतर
रहते मेरे जीवन में।
उल्लास विजय का हँसता
मेरे मतवाले मन में।

आशा आलोकित करती
मेरे जीवन के प्रतिक्षण।
हैं स्वर्ण-सूत्र से वलयित
मेरी असफलता के घन।

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास, प्रेम, साहस हैं
जीवन के साथी मेरे॥

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

आरही हिमांचल से पुकार,

है उदधि गरजता बार-बार,

प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,

सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
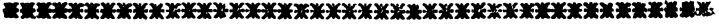
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
है वीर वेश में किन्तु कंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आए हैं आदि-अंत।
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

गलबाहें हों, या हो कृपाण,
चल चितवन हो, या धनुष-बाण,
हो रस-विलास या दलित-त्राण,
अब यही समस्या है दुरंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?
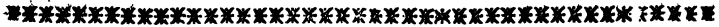
कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके! तुझमें क्यों लगी आग,
ऐ कुरुक्षेत्र! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

हल्दी घाटी के शिला-खंड,
ऐ दुर्ग! सिंह-गढ़ के प्रचंड,
राणा, ताना का कर घमंड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बँधी, स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन? हंत!
वीरों का कैसा हो वसंत?
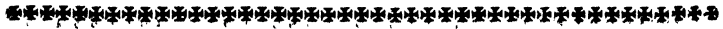
अपराधी है कौन, दण्ड का भागी बनता कौन ?

अपराधी है कौन ? दण्ड का
भागी बनता कौन ?
कोई उनसे कहे कि पल भर
सोचें रह कर मौन।

वे क्या समझ सकेंगे
उनकी खोजमयी मनुहार।
उनका हँस कर कह देना, "सखि,
छिप न सकेगा प्यार।

स्नेह-सलिल से ओत-प्रोत मन
भर नैनों में नीर।
इस उन्मादी के समीप आ
होना नहीं अधीर।

इन नैनों के प्रेम-वारि से
बुझ न सकेगी आग।
भभक उठेगी अग्नि न गाना
सखि! तुम करुण विहाग।

मैं जैसा हूँ, इसी तरह बस
रहने दो चुपचाप
यह है मेरी अग्नि जल रहा
हूँ मैं अपने आप॥"
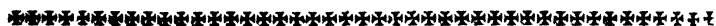
बार-बार वे कह जाते हैं
भर आँखों में प्यास ।
खो बैठे हैं वह जीवन का
हास और उल्लास ।

मुझे हाट से हटा उन्होंने
मोल लिया उन्माद ।
सखा बन गया जीवन का अब
उनके विषम विषाद !

है प्रफुल्लता के पर्दे में
भीषण-भीषण दाह ।
अपनी इन आँखों से मैं सब
देख रही हूँ आह !

जलती हूँ, ज्वाला उठती है
पा नैनों का नीर।
क्रान्ति मच रही है जीवन में
हूँ उद्‌भ्रान्त अधीर॥

नहीं मार्ग अज्ञात, किन्तु मैं
फिर भी हूँ गतिहीन।
वैभव की गोदी में हूँ पर
फिर भी दीन-मलीन।

कोई उनसे कहे कि मेरा
ही है सब अपराध।
उनको अपना कहूँ हृदय में
मेरे ही थी साध।

वही साध अपराध हुई,
हो गई हृदय का दाह।
प्राणों का उन्माद बन गई
मेरी पागल चाह।

मेरी प्याली

अपने कविता-कानन की
मैं हूँ कोयल मतवाली।
मुझ से मुखरित हो जाती
उपवन की डाली-डाली।

मैं जिधर निकल जाती
मधु मास उतर आता है।
नीरस जन के जीवन में
रस घोल-घोल जाता है।

सूखे सुमनों के दल पर
मैं मधु संचालन करती।
मैं प्राण-हीन का अपने
प्राणों से पालन करती।

मेरे जीवन में जाने
कितना मतवालापन है?
कितने हैं प्राण छलकते
कितना मधु-मिश्रित मन है?

दोनों हाथों मे भर-भर
मैं मधु को सदा लुटाती।
फिर भी न कमी होती है
प्याली भरती ही जाती।

मनुहार

क्यों रूठे हो, क्या भूल हुई,
किस लिए आज हो खिन्न हुए।
जो थे अभिन्न दो हृदय देव!
वे आज कहो क्यों भिन्न हुए?
सुख की कितनी अतुलित घड़ियाँ
हमने मिल साथ बिताई हैं।
कितनी ही कठिन समस्याएँ
हमने मिलकर सुलझाई हैं।
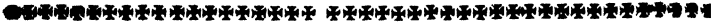
मिल बैठे दोनों जहाँ कहीं
संसार हमारा वहीं हुआ।
था स्वर्ग तुच्छ इन आँखों में
यदि एक वहाँ पर नहीं हुआ।
तुम थे मेरे सर्वस्व और मैं
जीवन—ज्योति तुम्हारी थी।
मैं तुममें थी, तुम मुझ में थे,
हम दोनों की गति न्यारी थी।

है ज्ञात मुझे सौ-सौ मेरे
अपराध क्षमा करते थे तुम।
मेरी कितनी त्रुटियों पर भी
कुछ ध्यान नहीं धरते थे तुम।
फिर क्या अपराध हुआ जिससे
रूखा व्यवहार तुम्हारा है ?
इन अपराधों से क्या कोई
अपराध इस समय न्यारा है ?
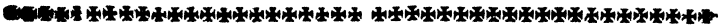
बोलो, अब कृपा करो, कह दो,
कह दो, अब रहा नहीं जाता।
यह मौन तुम्हारा हे मानी!
मुझ से अब सहा नहीं जाता।
हँसती हूँ, बातें करती हूँ,
खाती-पीती हूँ, जीती हूँ।
यह पीर छिपाए अन्तर में
चुपचाप अश्रु-कण पीती हूँ।

यह मर्म-कथा अपनी ही है
औरों को नहीं सुनाऊँगी।
तुम रूठो सौ-सौ बार तुम्हें
पैरों पड़ सदा मनाऊँगी।
बस, बहुत हो चुका, क्षमा करो,
अवसाद हटा दो अब मेरा।
खो दिया जिसे मद में मैंने
लाओ, दे दो वह सब मेरा।

प्रिय ! हृदय-देश में फिर अपने
जम जाने दो आसन मेरा।
बन जाने दो रानी फिर से
देदो, देदो शासन मेरा ।
देदो सुख का साम्राज्य मुझे,
दोनों दिल फिर मिल जाने दो।
मुरझाई जातीं आशा की
कलियों को फिर खिल जाने दो ।

उल्लास

शैशव के सुन्दर प्रभात का
मैंने नव विकास देखा ।
यौवन की मादक लाली में
जीवन का हुलास देखा ।

जग-झंझा-झकोर में
आशा-लतिका का विलास देखा ।
आकांक्षा, उत्साह, प्रेम का
क्रम-क्रम से प्रकाश देखा ।

जीवन में न निराशा मुझको
कभी रुलाने को आई ।
जग झूठा है यह विरक्ति भी
नहीं सिखाने को आई ।

परिदल की पहिचान कराने
नहीं घृणा आने पायी ।
नहीं अशान्ति हृदय तक अपनी
भीषणता लाने पायी ।

मैंने सदा किया है सब से
मधुर प्रेम का ही व्यवहार ।
विनिमय में पाया सदैव ही
कोमल अन्तस्तल का प्यार ।

मैं हूँ प्रेममयी, जग दिखता
मुझे प्रेम का पारावार।
भरा प्रेम से मेरा जीवन
लुटा रहा है निर्मल प्यार।

मैं न कभी रोई जीवन में,
रोता दिखा न यह संसार।
मृदुल प्रेम के ही गिरते हैं
आँखों से मोती दो-चार।

****

स्वागत-साज

ऊषे सजनि ! अपनी लाली से
आज सजा दो मेरा तन,
कला सिखा खिलने की कलिके !
विकसित कर दो मेरा मन ।

हे प्रसून-दल ! अपना वैभव
बिखरा दो मेरे ऊपर,
मुझसी मोहक और न कोई
कहीं दिखाई दे भू पर ॥
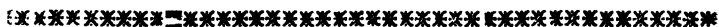
****

माधव ! अपनी मनोमोहिनी
मधु-माया मुझ में भर दो,
पल भर को कर कृपा सजीले !
मुझ को भी सज्जित कर दो।

अरी विहंगिनि गर्वीली,
ओ ऋतुपति के प्राणों की प्राण !
हे कलकंठ ! सिखा दे पल भर
के ही लिए मुझे कल गान !

अरी मयूरी ! नर्तन तेरा
मोहित करता है घन को,
मुझे सिखा दे कला, मोह लूं
मैं अपने मन के धन को।

सखि ! मेरे सौभाग्य-सदन में
लाली छा जाएगी आज,
वे आएंगे, मुझे सजा दो
दे दे कर तुम अपना साज ।

उस महान् वैभव के आगे
मैं भी ठहर सकूँ क्षण-भर ।
उस विशालता के सम्मुख सखि !
मेरा भी कुछ हो कण-भर ।

करुण-कहानी

आह ! करोगे क्या सुन कर तुम
मेरी करुण कहानी को ।
भूल चुकी मैं स्वयं आज
उस स्वप्न लोक की रानी को ॥
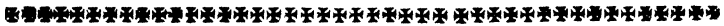
जो चुन कर आकाश कुसुम का
हार बनाने वाली थी।
उनके काँटों से इस उर का
साज सजाने वाली थी॥

अपने वैभव को बटोर कर
कहीं चढ़ाने वाली थी।
उन्हें पकड़ने को यह दुर्बल
हाथ बढ़ाने वाली थी॥

पर क्या संभव है पा जाना
नील गगन का प्यारा फूल।
जो मेरी आँखों में बरबस
रहा पुतलियों के संग झूल॥
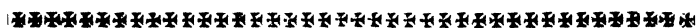
मुझे वहाँ तक पहुँचाने में
हो न सका विधि भी अनुकूल।
सजनि ! वायु भी तो बहती थी
उस दिन मेरे हो प्रतिकूल ॥

थे अप्राप्त तो मुझे सुनहले
सपने ही दिखलाये क्यों ?
छिप—छिप बिना सूचना के
मेरे मानस में आए क्यों ?

मधुमय पीड़ा से मेरी
रीती प्याली भरलाये क्यों ?
जलते जीवन में जल के
दो-चार बिन्दु टपकाए क्यों ?
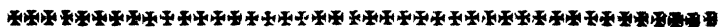
अरे प्राण ! इस भाँति निठुर
होकर ही तुमको जाना था ?
तो फिर क्यों ? केवल दो दिन के
लिए मुझे पहिचाना था ?

चपला की सी चमक दिखाकर
ही यदि फिर छिप जाना था।
तो प्राणेश ! तुम्हें मेरे
प्राणों में नहीं समाना था॥

आज झर रही हैं निर्झर-सी
झर-झर यह आँखे अविराम।
नहीं खोजने पर भी पाता
यह उद्भ्रान्त हृदय विश्राम॥

बाल सूर्य की प्रथम रश्मि के
साथ साथ ही आई शाम।
जल तम में प्रज्वलित हो उठी
वह वियोग—ज्वाला उद्दाम॥

यहीं रुको बस, बहुत सुन लिया
तुमने उसका करुण कलाप।
यहीं करो इति आगे सुनकर
नाहक ही होगा संताप॥

अर्थ हीन है, सारहीन है
उस पगली का सभी प्रलाप।
भूलो उसे, भूल भी जाओ
समझो उसे अरण्य-विलाप॥

मुझ अकिञ्चना के प्रति होकर
द्रवित न होना कहीं विकल।
मेरी ऊष्म उसाँसों से मत
झुलसा लेना अन्तस्तल॥

इस एकान्त तरल ज्वाला में
मिटने दो मुझको जल-जल।
एक जलन ही तो जीवन है,
प्रतिपल उसका प्रेमानल॥

विस्मृति में विलीन होने दो
अब अतीत की रानी को।
रहने दो, कर दया न पूछो
मेरी करुण कहानी को॥
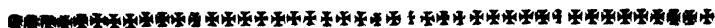
प्रथम दर्शन

प्रथम जब उनके दर्शन हुए हठीली आँखें अड़ ही गईं।
बिना परिचय के एकाएक हृदय में उलझन पड़ ही गई॥
मूँदने पर भी दोनों नेत्र खड़े दिखते सम्मुख साकार।
पुतलियों में उनकी छबि श्याम मोहिनी जीवित जड़ ही गई।
भूल जाने को उनकी याद किये कितने ही तो उपचार।
किन्तु उनकी वह मञ्जुल मूर्ति छाप-सी दिल पर पड़ ही गई॥

सेनानी का स्वागत

हम हारे या थके रुकी-सी
किन्तु युद्ध की गति है।
हमें छोड़कर चला गया
पथ-दर्शक सेनापति है।

अन्धकार छा रहा अमित सी
आज हमारी मति है।
जिधर उठाते दृष्टि दिखाई
देती क्षांति ही क्षति है॥

ऐसी घोर निराशा में तुम
आशा बनकर आओ।
स्वागत है शत बार विजय का
आओ मार्ग दिखाओ॥

वह सेनापति हमें आज भी
है प्राणों से प्यारा।
ऐसे विषम समय में भी है
उसका हमें सहारा॥

पर अपने ही चक्र-व्यूह में
है वह फंसकर हारा।
बोलो ऐ सेनानी! अब क्या
है कर्त्तव्य तुम्हारा॥

रण-भेरी का नाद सदा को
क्या अब रुक जायेगा।
जिसको ऊँचा किया वही क्या
झण्डा झुक जायेगा॥

गोली लाठी चार्ज जेल की
वह भीषण दीवारें।
काल कोठरी, दण्ड यातना
वे कोड़ों की मारें॥

प्रभुता-मद से भरी शत्रु की
व्यंग्य भरी बौछारें।
साक्षी हैं साहस की फिर हम
जीतें अथवा हारें॥

हैं सन्तप्त तदपि आशा से
स्वागत आज तुम्हारा।
एक बार फिर कह दो झंडा
ऊँचा रहे हमारा॥

साध

मृदुल कल्पना के चल पंखों
पर हम तुम दोनों आसीन ।
भूल जगत के कोलाहल को
रचलें अपनी सृष्टि नवीन ॥
वितत विजन के शान्त प्रान्त में
कल्लोलिनी नदी के तीर ।
बनी हुई हो वहीं कहीं पर
हम दोनों की पर्ण-कुटीर ॥

कुछ रूखा-सूखा खाकर ही
पीते हों सरिता का जल ।
पर न कुटिल आक्षेप जगत के
करने आवें हमें विकल ॥
सरल काव्य-सा सुन्दर जीवन
हम सानन्द बिताते हों ।
तरु-दल की शीतल छाया में
चल समीर सा गाते हों ॥
सरिता के नीरव प्रवाह सा
बहता हो अपना जीवन ।
हो उसकी प्रत्येक लहर में
अपना एक निरालापन ॥
रचें रुचिर रचनाएँ जग में
अमर प्राण भरने वाली ।
दिशि-दिशि को अपनी लाली से
अनुरंजित करने वाली ॥
तुम कविता के प्राण बनो मैं
उन प्राणों की आकुल तान ।
निर्जन वन को मुखरित कर दे
प्रिय ! अपना सम्मोहन गान ॥

झाँसी की रानी की समाधि पर

इस समाधि में छिपी हुई है
एक राख की ढेरी ।
जलकर जिसने स्वतन्त्रता की
दिव्य आरती फेरी ॥

यह समाधि, यह लघु समाधि, है
झाँसी की रानी की ।
अन्तिम लीलास्थली यही है
लक्ष्मी मरदानी की ॥

यहीं कहीं पर बिखर गई वह
भग्न विजय-माला-सी ।
उसके फूल यहाँ सञ्चित हैं
है यह स्मृति-शाला-सी ॥

सहे वार पर वार अन्त तक
लड़ी वीर बाला-सी ।
आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर
चमक उठी ज्वाला-सी ॥
बढ़ जाता है मान वीर का
रण में बलि होने से ।
मूल्यवती होती सोने की
भस्म यथा सोने से ॥
रानी से भी अधिक हमें अब
यह समाधि है प्यारी ।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की
आशा की चिनगारी ॥
इससे भी सुन्दर समाधियाँ
हम जग में हैं पाते ।
उनकी गाथा पर निशीथ में
क्षुद्र जन्तु ही गाते ॥

पर कवियों की अमर गिरा में
इसकी अमिट कहानी ।
स्नेह और श्रद्धा से गाती
है वीरों की बानी ॥
बुन्देले हर बोलों के मुख
हमने सुनी कहानी ।
खूब लड़ी मरदानी वह थी
झाँसी वाली रानी ॥
यह समाधि, यह चिर समाधि
है झाँसी की रानी की ।
अन्तिम लीलास्थली यही है
लक्ष्मी मरदानी की ॥

श्री केशवप्रसाद पाठक बी० ए०

पूछ रहे हो मेरा घर ?

पूछ रहे हो मेरा घर ?
कोलाहल से बड़ी दूर पर जहाँ खड़े हैं गिरि-गह्वर,
झर-झर झरते हैं निर्झर।

पवन जहाँ खेला करता है पुष्प-पुंज से हिल-मिलकर,
हँसती हैं कलियाँ खिलकर।

खग-दल कल कूजन से अपने मुखरित करते वन दिन-भर,
मधु पीते मधु-रत मधुकर।

रजत रश्मियाँ जहाँ चन्द्र की आती-जातीं छन-छन कर,
मुसकाते दिन में दिनकर।

प्राण-पुलक भरता निर्जन में तरु-पत्रों का मृदु मर्मर,
स्वर-गति-लय-मय कर अन्तर।

जहाँ तरल, शीतल जल बहता क्लान्त, श्रान्त मन का श्रम हर,
कल-कल में लोरी गाकर।

शान्ति जहाँ सुख से सोती है दूर्वा के वक्षस्थल पर,
सींकर से शैया कर तर।

घास-पात का बना हुआ है वहीं-कहीं मेरा भी घर,
छोटा-सा पर अति सुन्दर।
पूछ रहे हो मेरा घर ?
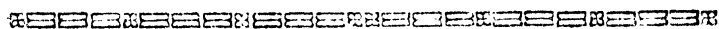
वसन्त

आये यदि आता है वसन्त;
अपना यौवन तो हुआ अन्त ।

ले एक साथ पाटल असंख्य,
मधु से पूरित कर अवनि-अंक,
मुखरित कर हँस-हँस दिग्दिगन्त,
पल में आकर पहुँचा वसन्त,

मैं हँस न सकूँगा किन्तु हन्त;
तब आये या जाये वसन्त ।
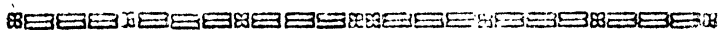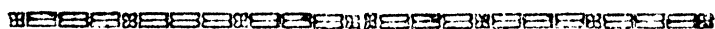
सच है, वैभव के मर्मी साज,
है लुटा रहा ऋतुराज आज,
पर हम करील हैं वही दीन,
जो रहे आज भी पात-हीन,

तब आये या जाये वसन्त,
अपना यौवन तो हुआ अन्त !

परिपूर्ण प्राणों की पुलक पीर,
छलकी कोमल उर कर अधीर,
दे गई कहीं परिमल-पराग,
ले गई कहीं उन्माद-राग,

हूँ किन्तु वही मैं विरस कुञ्ज,
आया-न-गया जिस तक वसन्त !
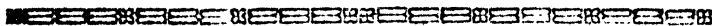
मलयानिल कहता "—फूल! फूल!!
ले चला तुम्हारी धूल-धूल।"
हमने तो पाये शूल-शूल,
जो हूँसे हृदय में हूल-हूल,

अब आये यदि आता वसन्त;
अपना यौवन तो हुआ अन्त।

यह डाल-डाल पर डोल-डोल,
अमराई में रस घोल-घोल,
कह रहा कौन—"उर-ग्रन्थि खोल
कर लो प्राणों का आज मोल,

आ पहुँची मधु वेला अनन्त।"
पर मुझको क्या यदि है वसन्त?
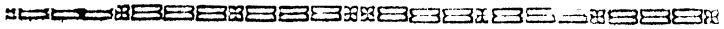
ऊषा में घूंघट-पट उघार
रवि-किरणें आतीं कर सिंगार,
कर में लेकर कुंकुम-गुलाल
करतीं अशोक के गाल लाल,

इनकी होली तो है अनन्त:
अपने यौवन का हुआ अन्त।

वासन्ती सजती पुनः साज,
है मदन-दिवस भी वही आज,
उठती न किन्तु उर में उमंग,
वह फिरी न फिर ऋतुराज-संग,

अब आये या जाये वसन्त:
अपना यौवन तो हुआ अन्त।
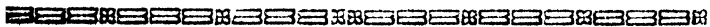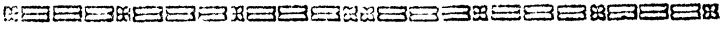
क्या कहा—"मोल लो रूप, रंग,
खिल उठें तुम्हारे अंग अंग।"
आया था मेरा अंतरंग,
कहलाता है अब वह अनंग,

नव आये यदि आता वसन्त;
अपना यौवन तो हुआ अन्त।
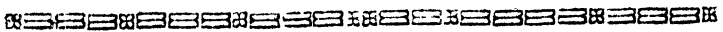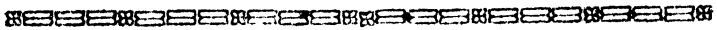
आह, क्या होगा लेकर प्यार ?
मुझे दे दो मेरा संसार !

नहीं है माना, मदिर मरन्द,
न अलिकुल का गुञ्जन स्वच्छन्द,
किन्तु है विरस कहाँ वह वृन्त ?
कभी जिस पर हँस कहता अन्त

"आज किस कलिका का उर-द्वार
खोलती मधुव्रत की गुञ्जार ?"

× × ×
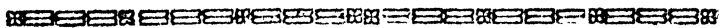
शुभ्र सरिता की लहरें लोल,
विहग-दल के मनहर मधु बोल,
प्राण का मदकल मृदु कल्लोल,
एक जीवन में इनका मोल?

बावले ! अपनी आँखें खोल,
न पीड़ा के रस मे विष घोल।

अरे, यह यौवन का मधु राग,
(पुष्प का मृदुतम मधुर पराग)
जलाता जीवन को बन आग,
जाग रे निद्रित मानव ! जाग,

भुक्ति से श्रेयस्कर है त्याग;
मुक्ति का साधन एक विराग।
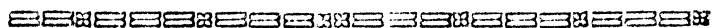
वादक से

अपने प्यासे प्राणों की
चिर अमित दाह संचित कर,
क्यों आज उड़ेल रहा है
वीणा के प्रति कम्पन पर ?
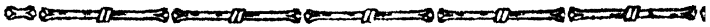
पीड़ा का प्रलय छिपा है
इन क्षीण सरल तारों में;
शत-शत उर का क्रन्दन है
इनकी मृदु झङ्कारों में।

वीणा का यह कातर स्वर
सुख को विचलित कर देगा;
कितने पुलकित प्राणों में
दुख का दंशन भर देगा।

अय विरह-विधुर उन्मादी!
चुप, शब्द न होने पाये;
सूखे सुमनों पर सोया
हत मधुकर जाग न जाये।
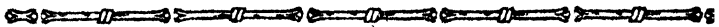
शीतल सुख-शशि से लालित
अगनित कोमल कलिकाएँ
अविदित, अकालवेला में
दुख-दव से झुलस न जाएँ ।

दुख, दैन्य, दाह, चिन्ता में
मुख शिथिल, करुण मुसकाना;
तममय काले अम्बर में
शशि क्षीण हँसी हँस जाता ।

जग-अधर-प्रवालों पर है
यह तरल हँसी हिमकन-सी;
मत चल समीर बन इसमें
अस्थिरता है जीवन की ।

मत मिला धूलि में निर्मम !
औरों के ये स्वर्णिम क्षण;
आकर न लौटते हैं फिर
पल-भर का इनका जीवन ।

अपने वसन्त-वैभव को
जग में न कभी बिखराया,
परिहास लिये पतझर का
क्यों आज रुलाने आया ?

संवेदन, अनुकम्पा ? हठ !
संसृति ही व्यथा-विहित है;
समदुख की भिक्षा इसमे
मानव ! न मानवोचित है ।
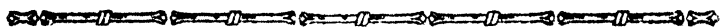
अन्तर ही में पीता जा
आकुल आँखों का पानी;
पल में विलीन हो जाती
जग-सुख की क्षीण कहानी

अभिलाषा, आशा, आँसू
चेतना यही चेतन की;
वेदना, वियोग, विसर्जन
पूर्णता यही जीवन की।

तप प्रखर ताप में तेरी
अन्तर्गति निखर रही हो;
पर सस्मित वदनाकृति से
शीतल द्युति बिखर रही हो।
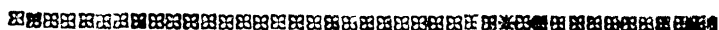
उल्लास, हास की गति हो
जीवन के प्रति कम्पन में;
प्रतिध्वनि सुख की मिलती हो
जग के नीरव कन-कन में,

रस, राग, रंग, वैभव, श्री
बरसाता जा वसुधा पर;
धीमे से चुर हो जाना
जब हृदय कहे—'अब बस कर'।
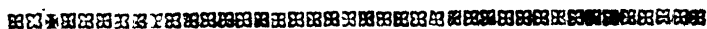
स्मृतियाँ

किसी का कहना यह प्रतिबार,
"हृदय ! मैं करता तुमको प्यार।"

हाँ, वह अनुपम वन था जब जीवन में पहली बार,
मधुर स्वप्न-सम आँखों में आये थे प्राणाधार,
मैं एकाकी, श्रान्त-पथा जा निकली थी उस ओर,
सघन कुंज की छाया में थे वे मेरे चितचोर,
आह, आज भी नहीं भूलती वे मादक उद्गार,
कवि की सांकेतिक भाषा में छू वीणा के तार,

किसी का कहना यह प्रतिबार,
"हृदय ! मैं करता तुमको प्यार।"

गूँज उठे वे स्वर निर्जन में नीरवता को चीर,
मैं अपना सर्वस्व चढ़ाने को हो उठी अधीर,
क्या जाने वह कौन मंत्र था, थी वह कैसी शक्ति ?
उस अज्ञात पथिक पर जिसने जागृत करदी भक्ति,
ज्ञात हुआ परिचित-सा उसके जीवन का विस्तार,
जाने क्यों वे सहज-सरल से भी उसके व्यवहार,

मृदुल उर की बन मूक पुकार,
व्यक्त कर जाते उसका प्यार।

मैं आराध्या बनी बन गये वे भी मेरे नाथ,
आज हो लिये हम दो प्राणी चिर अनन्त के साथ,
मधु निशीथ के स्तब्ध प्रहर में आया चुपके कौन ?
जागृत थी मैं शैया से उठ खड़ी हो गई मौन,
नत-नयना मुझ पर व्रीड़ा थी किए अटल अधिकार,
स्पंदित वक्ष, पुलक तनु भूली मैं सब लोकाचार,

वहाँ वे मेरे कर को धार,
लगे जतलाने अपना प्यार।

स्वप्निल शरद शर्वरी से सहसा पा मधु उन्मेष,
भासित होता जब असीम का धुँधला-सा सन्देश,
तब उन्मन, विषण्ण, बेसुध गलबाँहें मेरे डाल,
विस्तृत, ऋजु, अनन्त पथ पर चल देते वे तत्काल,
देख सुदूर क्षितिज में अवनी पर अम्बर का प्यार,
शरद क्षेत्र अवलोक लहलहे गूंथ अश्रु के हार,

पिन्हाते मुझ को बारम्बार,
व्यक्त कर अपना मादक प्यार !

तिरता जब निशीथ-नयनाम्बुधि में स्वप्निल संसार,
छायावन में किरन खोजती जब रहस्य का द्वार,
धूमिल अन्तरिक्ष में रुन-झुन किसकी चल पद्चाप ?
उन्हें बुलाती वे चल देते ले मुझको चुपचाप,
मधन किसी तरु तले विलँब सहसा मेरा कर धार,
अश्रु-बिन्दु से तर कर पल भर अपलक मुझे निहार,

किसी का कहना यह प्रतिबार,
"हृदय ! मैं करता तुमको प्यार ।"

उस सुदूर पर्वत-माला पर करते हास-विनोद,
हम विश्राम-शान्ति-सम दोनों जा लेटे सामोद,
वहीं निकट में निर्झर झर झर कर झरता था मन्द,
चपल अनिल अंचल चञ्चल कर चलता था स्वच्छन्द,
सहसा उनने चूमलिया हँस जब मुझको उस बार,
रूठी मैं मानिनी, मनाया था तब कर मनुहार,

किसी का कहना यह प्रतिबार
"हृदय! मैं करता तुमको प्यार।"

मेरी त्रुटियों का सदैव हँस कर देना प्रतिकार,
स्नेह-सिक्त स्वर में समझाना मुझको बारम्बार,
किन्तु कभी अनुचित हठ पर जब तुल जाती मैं क्रूर,
कुछ विरक्ति का भाव दिखा वे रहते मुझ से दूर,
पर पाकर एकान्त में मुझे पीड़ित क्षुब्ध अपार,
गद्गद गिरा, विकल मेरे संग बहा अश्रु की धार,

किसी का कहना यह प्रतिवार
हृदय ! मैं करता तुमको प्यार।

जब वह भीषण युद्ध छिड़ गया काँप उठा संसार,
हँसते-हँसते मातृ-भूमि पर युवक गये बलिहार,
लेटी थी मैं खुला हुआ था मेरा शयनागार,
यह क्या ! सैनिक वेश लिये वे आये मेरे द्वार,
—"आर्ये ! देश माँगता दो मुझको हँसकर उपहार"।
"जा" कह जिह्वा रुकी, न आँसू रुके, हुए दृग चार,

कह रहे थे वे नेत्र उदार
"हृदय ! मैं करता तुमको प्यार।"
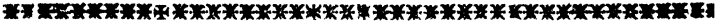
आशा-प्रत्याशा में यों ही बीते कितने मास,
सुना एक दिन आज हो चुका अपने अरि का नाश,
विजयी हुआ स्वदेश, शंख-ध्वनि छाई चारों ओर,
चढ़ीं अटा आचार-लाज ले वधुएँ हर्ष-विभोर,
नीचे दौड़ी देख द्वार अपना सैनिक सुकुमार,
किन्तु सीढ़ियों पर ही अंकित हुआ मिलन-आचार,

कहा चुम्बन कर अगणित बार
"हृदय ! मैं करता तुमको प्यार।"

वह भीषण क्षण, निशा-गोद में होता था दिन अस्त,
भाग्य-सूर्य के दुखद अस्त पर रोता था नभ त्रस्त,
कभी तड़क उठता था अम्बर का अन्तस्तल क्लान्त,
करता था चीत्कार पवन चपला भी थी उद्भ्रान्त,
ज्वर-पीड़ित उनका यह कहना-"गाओ आज मलार।"
सुन मेरी करुणार्द्र रागिनी के कोमल उद्गार,

किसी का कहना यह प्रतिवार,
"हृदय ! मैं करता तुमको प्यार"

जीवन की संध्या-बेला में मुझको बुला समीप,
संयत, धीर, खिन्न स्वर में कहना-"बुझ चला प्रदीप,
भिक्षा दो, अन्तिम भिक्षा दो, फैले हैं ये हाथ,
क्षमा चाहिए प्रिये ! विवश हो छोड़ रहा हूँ साथ।"
देख मुझे विचलित समझाने का करना उपचार,
गिरा किन्तु अपने नयनों से विवश अश्रु दो-चार,

किसी का कहना यह प्रतिवार,
"हृदय ! मैं करता तुमको प्यार"।

थकित, व्यथित, उन्मीलित नयनों से कर कुछ संकेत,
मेरे कर में धीमे से दे अपना कृष कर श्वेत,
उठना, उठकर बैठ, भुजा भर कर मुझको आक्रोड़,
अपने कम्पित म्लान अधर मेरे अधरों पर छोड़,
रो देना, चपला में दिखना गालों पर जल-धार,
अन्धकार में फिर सुन पड़ना वही व्यथित उद्गार,

हृदय ! मैं करता तुमको प्यार,
किसी का कहना यह प्रतिवार।